International Journal of Applied Research 2020; 6(11):204-206

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2020; 6(11): 204-206
www.allresearchjournal.com
Received: 14-08-2020
Accepted: 05-10-2020

डॉ० विमलेन्दु कुमार विमल
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
एस. एम. आर. सी. के.
महाविद्यालय समस्तीपुर,
सिरदिलपुर, पटोरी, समस्तीपुर,
बिहार,पिन–848504, भारत

Corresponding Author:
डॉ० विमलेन्दु कुमार विमल
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
एस. एम. आर. सी. के.
महाविद्यालय समस्तीपुर,
सिरदिलपुर, पटोरी, समस्तीपुर,
बिहार,पिन–848504, भारत

द्विवेदी–युग

डॉ० विमलेन्दु कुमार विमल

प्रस्तावनाः
आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम की अवधारणा के अंतर्गत द्विवेदी–युग की चर्चा की गयी है। भारतेन्दु–युग की समाप्ति तक आते–आते विकासोन्मुखी राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा बौद्धिक प्रवृत्तियों में काफी प्रगति हो जाती है और सुधारवादी आंदोलनों को भी यथेष्ट सफलता मिल चुकी होती है। आर्य–समाज के प्रचारकों का तो हिन्दी प्रदेश के शिक्षित लोगों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। कांग्रेस ने भी समाज में जो नवचेतना भर दी थी, उसका प्रत्यक्ष प्रभाव इस द्विवेदी–युग में दिखाई पड़ता है।
इस युग के कवियों ने संस्कृत की कोमल–कांत पदावलियों के वर्णवृत्तों को अपनाया है। इस युग में जहाँ मुक्तक काव्य लिखे गए, वहाँ प्रबंध काव्यों की भी रचना की गई। काव्य को लोक–रक्षण के साथ–साथ लोक–रंजन की ओर भी उन्मुख किया गया। इस युग के कुछ कवि तो केवल राष्ट्रीय नवचेतना को ही अपना लक्ष्य बनाते रहे और कुछ कवि सभी संस्कारों को संजोकर चलाने के पक्षधर रहे। इस युग के काव्य की विषय–सामग्री को ध्यानपूर्वक देखने से ऐसा विदित होता है कि मानवतावाद की भित्ति पर राष्ट्रीय नवचेतना से संबद्ध भावों के साथ–साथ मध्यकालीन भक्ति एवं श्रंगार को भी उचित स्थान दिया गया है। इस दृष्टि से इस युग की कविताओं में राष्ट्र प्रेम, समाज प्रेम, अध्यात्म प्रेम, दाम्पत्य प्रेम, प्रकृति प्रेम आदि की व्यंजना हुई है। चूँकि इस युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके मंडल के कवियों का वर्चस्व रहा और द्विवेदी–मंडल के बाहर के कविगण भी किसी–न–किसी रूप में द्विवेदी जी से ही प्रभावित रहे, इसलिए इस युग को 'द्विवेदी–युग' की संज्ञा दी गई है। इस युग के कवियों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जगन्नाथदास रत्नाकार, पंडित रामचरित उपाध्याय, पंडित गिरिधर लाल शर्मा, नवरत्न, पंडित लोचन प्रसाद पांडेय नाथूराम, शंकर शर्मा, पंडित रूपनारायण पांडेय, पंडित सत्यनारायण, कविरत्न, पंडित श्रीधर पाठक, बाबू मौथिली शरण गुप्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी मूलतः गद्य–लेखन के रूप में जाने जाते हैं, किंतु उन्होंने पद्य में रचनाएं की थी। उनकी आरंभिक पद्य–रचनाओं में लौकिक श्रंगार और लौकिक प्रेम की व्यंजना हुई है। जिन रचनाओं को पढ़कर उनकी पत्नी ने उसे ऐसे स्थान पर छिपा दिया, जिसका पता आज तक नहीं चल पाया है। बाद में उन्होंने जो रचनाएँ की उनमें जन्मभूमि के प्रति प्रेम की भावना तो झलकती ही है, राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के प्रति भी प्रेम की भावना दिखाई पड़ती है। जन्मभूमि के प्रति प्रेम की भावना दर्शाते हुए उन्होंने अपना परिचय देने के क्रम में कहा है–

'रायबरेली के अंतर्गत सुरसरि तट दौलतपुर ग्राम,
जिसमें श्री हनुमंत–तनय थे रामसहाय द्विवेदी नाम।
तिनके एकमात्र सुत मैंने वह 'कुमारसंभव का सार',
अबके कवियों को प्रणाम कर लिखा किसी विधि रूचि अनुसार'।

पंक्तियों में अपने ग्राम की जो विशेषताएँ द्विवेदी ने बताई हैं उससें विदित होता है कि उनमें जन्मभूमि के प्रति बहुत ही अधिक प्रेम का भाव था।
जो व्यक्ति राष्ट्रभाषा से प्रेम रखता है, उसमें राष्ट्रीयता की भावना स्वतः ही होती है। भारतेन्दु ने जिस खड़ी बोली हिन्दी को जन्म दिया, उसे व्याकरण– परिनिष्ठित करके परिष्कृत करने का काम आचार्य द्विवेदी ने ही किया। एस० बी० पांडेय के शब्दों में, 'हिन्दी भाषा का रूप आचार्यजी के साहित्य क्षेत्र में आने के समय बड़ा अनिश्चित था। उसमें बड़े–बड़े साहित्यिक लेखक व्याकरण की भूल करते थे। कोई नियम न था, कोई नियंत्रण न था। अराजकता चल रही थी। जिसने जैसा चाहा, भाषा से मनमानी की।

द्विवेदी जी को लेखकों की यह निरंकुशता असह्य हो उठी– उन्होंने देखा कि यह लक्षण जीवित और समुन्नत भाषा के न थे। अतएव, उन्होंने समय–समय पर बड़ी निर्भीकता के साथ इन भूलों को अपने लेखों से दिखाया और एक कुशल शिल्पी की भाँति भाषा को सुंदर और परिमार्जित रूप दिया।,[2]

कविता के परिमार्जित रूप की चिंता करते हुए उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, उनमें उनके राष्ट्र–प्रेम या राष्ट्रभाषा–प्रेम की झलक दृष्टिगोचर होती है, यथा–

'सुरम्यरूपे रसराशिरंजिते,
विचित्रवर्णाभरेण कहां गयी?
अलौकिकानंद विघायिनी महा,
कवीन्द्रकांते! क्विते! अहो कहाँ?'[3]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी कविता का एक अच्छा और सशक्त रूप खड़ा करना चाह रहे थे। इन्होंने सैकड़ों साहित्यकारों का मार्ग–दर्शन किया और उनकी रचनाओं का संशोधन किया। ऐसा करने के पीछे उनकी एक मंशा थी कि खड़ी बोली हिन्दी का रूप निखर सके।

द्विवेदी–युग के ही पंडित श्रीधर पाठक की कविताओं में छंद, पद–विन्यास, वाक्य–विन्यास आदि देखने योग्य हैं। चूँकि वे हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान रखते थे, अतःइनकी कविताओ का अपना एक अलग ही तेवर है। खड़ी बोली हिन्दी में इनके द्वारा लिखित 'एकांतवासी योगी' को काफी प्रसिद्धि मिली। बाद में इन्होंने खड़ी बोली हिन्दी में ही 'श्रान्तपथिक' (गोल्ड स्मिथ के ट्रेवेलर का अनुवाद) की रचना की। तत्पश्चात्ब्रजभाषा में इन्होंने 'उजड़ाग्राम' लिखा। इन सभी रचनाओं में किसी–न–किसी प्रकार के प्रेम की व्यंजना हुई है।

उन्होंने जहां भगवत् प्रेम संबंधी रचनाएँ की हैं, वहाँ उन्होंने प्रकृति–प्रेम और राष्ट्र–प्रेम संबंधी कविताएं भी की हैं। उनके द्वारा रचित 'एकांतवासी योगी' के भगवत् प्रेम का एक नमूना यहाँ प्रस्तुत है, यथा–

'आज रात इससे परदेशी चल कीजै विश्राम यहीं।
जे कुछ वस्तु कुटी में मेरे करो ग्रहण, संकोच नहीं।।
तृण–शय्या औ' अल्प रसोई पायो स्वल्प प्रसाद।
पैर पसार चलो निद्रा, लो मेरा आर्शीवाद।।
प्रान पियारे की गुन–गाथा, साधु कहाँ तक मैं गाऊँ।
गाते–गाते चुके नहीं वह चाहे मैं ही चुक जाऊँ।।[4]

इसी प्रकार श्रीधर पाठक की कविताओं में प्रकृति के भी एक–से–एक सुंर दृश्य उभरे हैं, जो इस बात के सूचक हैं कि उन्हें प्रकृति से भी अपार प्रेम था। यहाँ प्रकृति–प्रेम का एक नमूना दर्शनीय है–

'प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप संवारति।
पल–पल पलटति भेस छनिक छवि छिन–छिन धारति।।
विमल अम्बु–सर मुकुरन महँ मुख–बिम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन–मन वारति।।[5]

इन पंक्तियों को देखने से ऐसा विदित होता है कि कविवर श्रीधर पाठक को प्रकृति से बड़ा ही अधिक प्रेम था। तभी तो उन्होंने प्रकृति को रूपायित कर उसके विविध हाव–भाव और श्रंगार का बड़ा ही सजीव और मनमोहनक चित्र खींचा है।

कवि ने अपने देश की प्रकृति के सौंदर्य–वर्णन के क्रम में राष्ट्र–प्रेम को नहीं विस्मृत किया है। भारत देश को उन्होंने स्वर्ग–सदृश या स्वर्ग से भी बढ़कर माना है। यह उनके राष्ट्र–प्रेम का अन्यतम निदर्शन है। निम्नलिखित पंक्तियों में कवि के उस राष्ट्र–प्रेम की भावना देखी जा सकती है–

यहीं स्वर्ग सुरलोक, यहीं सुरकानन सुंदर।
यहि अमरन को लोक, यहीं कहुँ बसत पुरंदर।।
तहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै।
मम समान मन मुग्ध ललकि लोचन फल लीजै।।[6]

इन पंक्तियों में कवि के हृदय का अनन्य राष्ट्र–प्रेम व्यंजित हुआ है।

द्विवेदी–युग के ही अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के काव्य में भी प्रेमाभिव्यंजना मिलती है। उनकी रचनाओं में जहाँ आध्यात्मिक प्रेम की भावना व्यंजित हुई है, वहाँ प्रकृति–प्रेम, मानवता के प्रति प्रेम और देश–प्रेम का भाव भी व्यक्त हुआ है। इनके द्वारा रचित ''रसिक–रहस्य'', ''प्रमाम्बु–प्रश्रवण'', ''प्रमाम्बु–प्रवाह'', ''प्रेम–पुष्पहार'', ''रसकलश'' आदि काव्य–ग्रंथों में लौकिक धरातल पर आध्यात्मिक प्रेम की भावना व्यंजित हुई है। इनकी पुस्तक 'ऋतुमुकुर' पद्यप्रसून आदि में प्रकृति–प्रेम की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है और 'कर्मवीर', ''प्रियप्रवास'' आदि ग्रंथों में मानवता के प्रति प्रेम का भाव दर्शाया गया है। प्रियप्रवास में गोपी–कृष्ण और राधा–कृष्ण के प्रेम का चित्र तो खींचा ही गया है, नंद–यशोदा के वात्सल्य प्रेम की भी अभिव्यंजना बड़े ही मार्मिक ढंग से की गयी है। इतना ही नहीं, जन्मभूमि के प्रति भी प्रेम की व्यंजना इस महाकाव्य में व्यंजित की गयी है।

वाल्यावस्था से ही कृष्ण को गोपियों से और गोपियों को कृष्ण से प्रेम रहा। ग्वाह–वालों को भी कृष्ण के प्रति उतना ही प्रेम रहा और कृष्ण का प्रेम भी ग्वाल–वालों के प्रति उसी प्रकार रहा। तभी तो सभी साथ–साथ खेलते–कूदते, गायें चराते और आनंद मनाते थे। अन्य सभी लोगों के प्रति भी कृष्ण के हृदय में प्रेम की भावना थी। कवि के शब्दों में –

उछलते शिशु थे अति हर्ष थे,
युवक थे रस की निधि लूटते।
जरठ को फल लोचन का मिला,
निरख के सुषमा सुख मूल की।।[7]

जहाँ तक प्रकृति–प्रेम की बात है, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अपनी रचनाओं में इसका भी बड़ा ही सुंदर चित्र खींचा है। हरिऔध जी को प्रकृति से काफी प्रेम था। उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा भी है– 'घन–पटल का वर्ण–वैचित्र्य, शस्य श्यामला धरित्री, पावस की प्रमोदमयी सुषमा, ऋतु–परिवर्तन–जनित प्रवाह, कोकिल का कलरव, पक्षी–कुल का कल–निनाद, शरद–ऋतु की शोभा, दिशाओं की समुज्जवलता, अनन्त प्राकृतिक सौंदर्य, नाना प्रकार के चित्र, मधुरगाान, ज्योत्स्ना–रंजित व्योम, तारक–मंडित नील नमोमण्डल, सुचित्रित विहंगावली, पूर्णिमा का अखिल कलाधार, मनोमुग्धकारी हृदयावली, सुसज्जित रम्य उद्यान, ललित लतिका मनोरम पुण्यमय मेरे आनंद की प्रिय–सामग्री है। किंतु पावस की सरस छवि, वसंत की विचित्र शोभा, कोकिल का कुहुक और कलकण्ठ का मधुर गान, वह भी भावमयी कविता वलित, मुझको उन्मत्तप्राय कर देते हैं।[8]

द्विवेदी–युग के कवियों में लाला भगवान 'दीन' का भी नाम भी उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने प्रेम–संबंधी कविताएँ लिखी हैं। लालाजी भी ब्रजभाषी हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में कवि का राष्ट्र–प्रेम झलकता है–

'वीरों की सुमाताओं का यश जो नहीं गाती।
वह व्यर्थ सुकवि होने का अभिमान जनाता।।
जे वीर सुयश गाने में है ढील दिखाता।
वह देश के वीरत्व का है मान घटाता।।'

लाला भगवान 'दीन' द्वारा रचित तीन ही काव्य हैं– 'वीर क्षत्राणी', वीर बालक और वीर–पंचरत्न में राष्ट्र–प्रेम का स्वर ध्वनित हुआ है।[9]

तृतीय उत्थान–काल के कवियों में द्वितीय उत्थान–काल के कवि मैथिलीशरण गुप्त भी आते हैं। इनके अतिरिक्त इस काल के कवियों में पंडित बदरी भट्ट, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, ठाकुर गोपालशरण सिंह, अनूप शर्मा, जगदंबा प्रसाद 'हितैषी', श्यामनारायण पाण्डेय, पुरोहित प्रतापनारायण, तुलसीदास शर्मा आदि के नाम आते हैं। इन कवियों ने भी अपनी–अपनी रचनाओं में किसी–न–किसी रूप में प्रेम का चित्रण किया ही है।

संदर्भ सूचि :–

1. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली–1, पृष्ठ संख्या 6
2. डॉ. रतिभानू सिंह 'नाहर'– हिन्दी साहित्य : एक ऐतिहासिक अध्ययन, प्र.सं., भारती भवन, पटना–1, पृष्ठ संख्या 106
3. वही, पृष्ठ संख्या 106
4. वही, पृष्ठ संख्या 407
5. हिन्दी पद्य संग्रह, इंडियन पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, प्र.सं., पृष्ठ संख्या 151–52
6. वही, पृष्ठ संख्या 152
7. प्रियप्रवास – अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 05
8. प्रो० राजेश शर्मा– प्रियप्रवास समीक्षा, द्वि० सं० अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली–6
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, 36वाँ संसकरण नगरी, प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ संख्या 430